नए ईसवी साल की आमद

जनाब शकील हसन शमसी साहब "राष्ट्रीय सहारा" देहली

इन दिनों हिन्दुस्तान भर में नये साल का जश्न मनाए जाने की तैयारियाँ शबाब पर हैं। बड़ी-बड़ी तिजारती कम्पनियों की तरफ़ से इस दिन को बढ़ावा दिये जाने की वजह से नये साल का जश्न अब हिन्दुस्तान के शहरी इलाक़ों का सबसे बड़ा क़ौमी त्योहार बन गया है। अमीर ग़रीब सब ही एक दूसरे को नये साल की मुबारकबाद देने में आगे बढ़ने की कोशिश करते हैं और एक दूसरे को गिफ़्ट भेजकर खुश होते हैं। जब कि ये त्योहार सिर्फ़ ईसाईयों का त्योहार था, लेकिन अब इसमें सब ही मज़हब के लोग शामिल हो गए हैं। सब बिना किसी मज़हबो मिल्लत की तफ़रीक़ के 31 दिसम्बर और पहली जनवरी की दरमियानी रात में नये साल का जश्न मनाते हैं। पटाख़े छोड़ते हैं, डांस करते हैं, प्यार-मुहब्बत में मशग़ूल होते हैं और मुख़तलिफ़ तरह की बेहयाईयाँ दिखाने को ऊँची सोसाइटी का एक हिस्सा समझते हैं। जबकि किसी को नहीं मालूम होता कि वह नया साल क्यों मना रहे हैं? क्या हो गया इस रात में जो सारे लोग दीवाने हुए जा रहे हैं? न तो मौसम बदला न दिन रात? तो फिर जश्न किस बात का? किसी को ये नहीं मालूम होता कि कलीसाओं में आज ख़ास दुआओं की तक़रीब क्यों हो रही हैं? किसी को नहीं पता कि चर्च में रात के 12 बजे घण्टे क्यों बज रहे हैं? नया साल ईसाईयों का है, लेकिन ईसाईयों से ज़्यादा ख़ुशी मनाने वालों में हिन्दू, मुसलमान, सिख, जैन और बौद्ध समाज के लोग शामिल होते हैं। सब इस दिन को एक सेकोलरिज़्म की निशानी समझकर अपनी क़िस्मत का लेखा-जोखा पढ़ते हैं। साल भर के लिए पेशीनगोईयों का एक सिलसिला शुरु हो जाता है, नये साल के स्टार क्या कहते हैं, इस पर पूरे-पूरे कालम सियाह हो जाते हैं। कई मशहूर नुजूमी साल भर की पेशीनगोईयों पर खुसीसी किताबें भी पेश करते हैं (जो साल के आख़िर में पढ़ी जाएं तो मालूम पड़ता है कि उनके अंदाज़े कितने झूटे साबित हुए)।

ईसाई राहिबों की ये बहुत बड़ी कामयाबी रही है कि उन्होंने अपनी मज़हबी तक़रीबात पर सेकोलरिज़्म का ग़िलाफ़ इस तरह चढ़ा दिया कि आम लोग ये भी भूल गए कि जिस दिन वह ख़ुशी मना रहे हैं, उसका हिन्दुस्तानी मज़हबों या हिन्दुस्तानी समाज से कुछ लेना-देना नहीं है। अंग्रेज़ों का तरीक़ा ये रहा है कि अगर उन्होंने अपने मुक़द्दस दिन इतवार को सारे मुल्क में छुट्टी करने का रिवाज शुरु किया तो किसी को ये नहीं लगने लगा कि सण्डे से ईसाईयों को कुछ लेना-देना है (लेकिन अगर कोई जुमा को छुट्टी ले तो उसको फ़िरक़ापरस्त समझा जाएगा) इसी तरह नए साल के जश्न को भी भोले-भाले हिन्दुस्तानी यही समझने लगे कि ये एक सेकोलर जश्न है और इसका किसी फ़िरक़े से ताल्लुक़ नहीं है। असल में ये दिन रोमन बादशाहों ने क़ायम किया था और वह अपने मौसम के मुताबिक़ हर साल पहली मार्च को नए साल का जश्न मनाते थे। इस कैलेण्डर में 10 महीने होते थे, लेकिन बाद में जूलिस सीज़र ने इस कैलेण्डर में 2 महीनों का इज़ाफ़ा करके साल को बारह महीने का कर दिया, मगर रोमन लोगों ने इस सरकारी कैलेण्डर को दिल से कुबूल नहीं किया और वह मार्च में ही अपना नया साल मनाते रहे, लेकिन बाद में रोम के पादरी पोप ग्रेवरी XIII ने इसको हज़रत ईसा[अ०] की

विलादत के साथ जोड़ा तो लोगों ने इस साल को आसानी के साथ मान लिया। ईसाईयों के अक़ीदे के मुताबिक़ हज़रत ईसा[अ०] की विलादत 25 दिसम्बर को हुई थी उनकी छटी की रस्म 31 दिसम्बर को ही हुई थी, इसलिए ईसाई अक़ीदे के लोग दुनिया भर में इसको नए साल की शक्ल में मनाने पर तैयार हो गए और फिर जहाँ-जहाँ उन्होंने हमला किया और मुल्कों को तलवार के ज़ोर पर जीता, वहाँ-वहाँ उन्होंने नए साल के जश्न मनाए जाने की शुरुआत भी की। यरोश्लम में पाए जाने वाले सर्व के ख़ास पेड़ों को 25 दिसम्बर से ही सजाकर रखने की रस्म भी अंग्रेज़ों ने शुरु की। इन पेड़ों के चारो तरफ़ मुख़तलिफ़ अज़ीज़ और रिश्तेदार एक दूसरे के लिए तोहफ़े लाकर रख देते हैं, जो नए साल में ही खोले जाते हैं। हिन्दुस्तान में भी जगह-जगह आज आपको क्रिसमस ट्री सजे हुए नज़र आएंगे (क्रिसमस ट्री की शुरुआत की भी एक कहानी है, जिस पर इस मज़मून में बात करने की जगह नहीं है)।

हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ों के आने से पहले तक कोई अंग्रेज़ी महीनों के नाम भी नहीं जानता था तो नए साल का जश्न मनाने का तो कोई सवाल ही नहीं उठता था। पुराने ज़माने में चूँकि हिन्दुस्तान मुख़तलिफ़ हिस्सों में बटा हुआ था, उसी हिसाब से यहाँ के मुख़तलिफ़ हिस्सों में अलग-अलग दिनों में नये साल का जश्न मनाया जाता था। यहाँ के कैलेण्डर को पंचाग कहा जाता था और हिन्दू कैलेण्डर का मक़बूल तरीन नाम विक्रम समवत है। ये नाम शहंशाह विक्रमादित्त ने उज्जैन पर जीत पाने के बाद दिया था। ये पंचांग हज़रत ईसा[अ०] से 50 साल पहले शुरु हुआ था। उसी ज़माने में जूलियस सीज़र ने रोम में भी अपने नये कैलेण्डर को तरतीब दिया था। हिन्दू कैलेण्डर में मौसम सूरज के हिसाब से चलते हैं, महीने चाँद के हिसाब से और रात दिन चाँद और सूरज दोनों के साथ चलते हैं। हिन्दू कैलेण्डर का पहना दिन कारतिक महीने की पहली तारीख़ को होता है। इसके अलावा अलग-अलग सूबों में मौसम के हिसाब से अलग-अलग दिनों में नया साल मनाया जाता है।

आसाम में नए साल का जश्न रंगोली बीहू के नाम से हर साल 15 मार्च को मनाया जाता है। आंध्रा प्रदेश और कर्नाटक के लोग चैत के महीने की पहली तारीख़ को अपना नया साल मनाते हैं, महाराष्ट्र वाले अपना नया साल गड़ी पड़वा भी इसी दिन मनाते हैं, तमिलनाडु के रहने वालों के लिए नया साल Puthandu होता है और ये दिन हर साल 14 अप्रैल को पड़ता है, जबकि पड़ोसी रियासत केराला में नए साल का पहला दिन Medam महीने की पहली तारीख़ को होता है, उस दिन सूरज बुर्जे असद में दाख़िल होता है। उत्तरी हिन्दुस्तान के सबसे बड़े सूबों उत्तर प्रदेश और बिहार में नए साल के पहले दिन को मकरसकरान्ती कहते हैं। ये चैत महीने की पहली तारीख़ को होता है। सिख फ़िरक़े के लोग बैसाखी को अपने नए साल का पहला दिन मानते हैं। ये दिन 13 या 14 अप्रैल को पड़ता है इसके अलावा बंगाल में भी 14 या 15 अप्रैल को नए साल का जश्न होता है। इसे अलावा भी मुख़तलिफ़ सूबों में इन ही तारीख़ों के आसपास नए साल का जश्न मनाया जाता है।

हिन्दुस्तान में जब मुग़लों को हुकूमत का मौक़ा मिला तो उन्होंने नौरोज़ की तक़रीबें मुनअक़िद कीं। नये साल की ये तक़रीबें, लेकिन हिन्दुस्तानी तारीख़ों पर नहीं थीं, बल्कि सेन्ट्रल एशिया और ईरान और अफ़ग़ानिस्तान में 21 मार्च या 20 मार्च को मनाए जाने वाले नौरोज़ के त्योहार की मुनासिबत से ही होता था। असल में इस इलाक़े के लोगों के लिए मार्च का तीसरा हफ़्ता एक बहुत बड़ी मौसमी तबदीली लाया करता था। बर्फ़ गिरना बंद होती थी और पतझड़ का दौर ख़त्म होकर बहार के मौसम की आमद-आमद होती थी। हिन्दुस्तान के बरफ़ीले इलाक़ों के लिए मौसम के हिसाब से ये जश्न तो ठीक था, लेकिन साहिली इलाक़ों या मैदानी इलाक़ों में इसकी कोई अहमियत नहीं थी, बल्कि इन्तेहाई गर्मी के दिनों की शुरुआत अप्रैल में होने की वजह से अवाम इस मौक़े पर जश्न मनाने की पोज़ीशन में नहीं थे। शायद इसीलिए पूरे हिन्दुस्तान में कभी भी एक साथ नए साल का जश्न नहीं मनाया जा सका। यहाँ आबाद पारसी और बहाई फ़िरक़े के लोग आज भी नौरोज़ का जश्न 21 मार्च को मनाते है। इसके अलावा शिया फ़िरक़े के लोग भी 21 मार्च को

नज़रो नियाज़ का प्रोग्राम करते हैं और इस बात पर अक़ीदा रखते हैं कि इसी दिन हज़रत अली^अ० ने ख़िलाफ़त की मसनद संभाली थी, लेकिन ये रस्म चूँकि ईरानियों के यहाँ से आई थी, इसलिए नौरोज़ सिर्फ़ एक दिन की रस्म तक महदूद रहा। ईरानी महीनों के नाम तक किसी को मालूम नहीं थे, इसलिए नए साल से इसको जोड़ा नहीं जा सका मगर नौरोज़ से पहले तक आम तौर पर लखनऊ के लोग आंगन या छत पर सोते नहीं हैं, बर्फ़ के पानी का इस्तेमाल नहीं करते और यहाँ तक कि पंखे भी नहीं चलाए जाते हैं। ईरान के शम्सी कैलेण्डर के पहले महीने फ़रवरदीन के पहले दिन को नौरोज़ कहा जाता था, मगर हिन्दुस्तान में भले ही जश्ने नौरोज़ होता हो शम्सी कैलेण्डर यहाँ नहीं चल सका और यहाँ अंग्रेज़ों के आने से पहले तक सिर्फ़ विक्रम समवत और हिजरी कैलेण्डर ही चला करते थे।

आज़ादी से पहले सिंधी फ़िरक़े के लोग चेतीचंद का त्योहार बड़े ख़ुशी-ख़ुशी मनाते थे। यही उनके लिए नए साल का जश्न था, ये भी चैत के महीने का चाँद देखकर मनाया जाता था, इसलिए इसको चैतीचंद कहा जाने लगा। इसके उलट गुजरात में नया साल कारतिक शुक्ला के महीने में मनाया जाता है, लेकिन अब ये सारे कैलेण्डर, तक़वीम और नए साल के पंचाग पीछे चले गए हैं। हिन्दुस्तान के हर छोटे-बड़े शहर में नए साल का जश्न जमकर होता है, मोबाईल पर मैसेज आने का सिलसिला तो हफ़्ताभर पहले ही से शुरु हो जाता है। जो लोग नए साल का जश्न नहीं मनाते उनको बैकवर्ड और नीचा समझा जाता है, जो लोग प्यार-मुहब्बत, गाने-नाचने की महफ़िलों से अलग रहते हैं, उनको पुराने ख़यालात वाला कहा जाता है, शराब के जो दरिया बहाए जाते हैं, उनमें न डूबने वालों को समाज के साथ न चलने वाला माना जाता है, जो बदकारी में न लगे उनको पिछड़ा हुआ माना जाता है और जो पटाख़े न छुड़ाए उसे कंजूस कहा जाता है। बहरहाल अब बेहयाई के इस तूफ़ान की रोकथाम मुमकिन नहीं और नई नस्ल को उसके अज़ाबसे महफ़ूज़ रखने का भी कोई रास्ता नज़र नहीं आता। अल्लाह ही ख़ैर करे अपने हिन्दुस्तानी नौजवानों की...!

(बशुक्रिया रोज़नामा राष्ट्रीय सहारा (उर्दू) 29 दिसम्बर 2010^ई०)

□□□

इमाम जाफ़रे सादिक़^अ० और एक प्यासा ईसाई

एक रोज़ इमाम जाफ़र सादिक़ अलैहिस्सलाम मक्के से मदीने जाने वाले पथरीले रेगिस्तान से गुज़र रहे थे आपके ग़ुलाम "मसादिफ़" भी आपके साथ थे रास्ते में हज़रत की नज़र एक शख़्स पर पड़ी जो अपना मुँह एक पेड़ के तने की तरफ़ किए हुए था उसकी हालत ख़िलाफ़े मामूल हो रही थी, हज़रत ने मसादिफ़ से फ़रमाया हम उस आदमी की तरफ़ चलते हैं, कहीं वह प्यासा न हो और प्यास की वजह से वह इस तरह पड़ा हुआ हो। इमाम^अ० और मसादिफ़ दोनों उसके नज़दीक पहुँचे और उस से पूछा! प्यासे हो? उसने कहा! हाँ मसादिफ़ इमाम के हुक्म से नीचे उतरा और उस शख़्स को पानी पिलाया मगर उसके लिबास और चाल-ढाल से मालूम हुआ कि वह मुसलमान नहीं है बल्कि मसीही दीन का मानने वाला है। जब इमाम^अ० और मसादिफ़ उस शख़्स से ज़रा आगे बढ़ गए तो मसादिफ़ ने इमाम से पूछा कि क्या ईसाई को सदक़ा देना जाएज़ है? इमाम^अ० ने फ़रमाया, हाँ! ऐसी हालत में ज़रूरत के वक़्त।

(किताब "इमाम जाफ़रे सादिक़^अ० - पेश्वा व रईसे मज़हब" अज़ हुज्जतुल इस्लाम अक़ीक़ी बख़्शाइशी, पेज-20 से)